Prof. Shashi Sharma, Principal
Professor, Department of Political Science
e-mail: prof.shashisharma@gmail.com

Political Sociology, PAPER VII

Course Content-12: 'Relationship between Politics and Society in India'

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावाद : एक विश्लेषणपरक अध्ययन

(Regionalism in Indian Politics: An Analytical Study)

भारतीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में क्षेत्रीयतावाद का अभिप्राय है सम्पूर्ण राष्ट्र के बजाय किसी राज्य यानी कि क्षेत्र विशेष के प्रति अवाम में ज्यादा लगाव, भक्ति, निष्ठा या प्रतिबद्धता की भावना की मौजूदगी। क्षेत्रीयतावाद का आशय किसी भी देश के उस छोटे से हिस्से से है जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व भौगोलिक आदि कारणों से अपने पृथक् अस्तित्व–निर्माण हेतु चेतनशील है। सामान्य अर्थ में क्षेत्रवाद किसी क्षेत्र विशेष की उस स्थिति का बोधक है जिसके माध्यम से उस क्षेत्र के लोग अपने संदर्भित क्षेत्र के विकास के लिए पृथक् पहचान स्थापित करके अपने मजबूत अस्तित्व के निर्माण हेतु राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक शक्तियों में इज़ाफ़ा करना चाहते हैं।

अन्य विकासशील व्यवस्थाओं की भांति एक विकासशील व्यवस्था होने की वजह सेआजादी के बाद भारत की महत्त्वपूर्ण समस्याओं की फ़ेहरिस्त में राष्ट्रीय एकीकरण का स्थान सर्वप्रमुख है। राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया का व्यवस्था की लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रियाओं के साथ गहरा संबंध है। राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या का सीधा संबंध राजनीतिक विकास एवं आधुनिकीकरण से है। व्यवस्था में मौजूद, जातिगत, भाषागत, धर्मगत या प्रान्तगत निष्ठाएं संकीर्ण क्षेत्रीयतावाद के तत्त्वों को बढ़ावा देती हैं जो देश की एकता व अखण्डता के मार्ग में अवरोध पैदा करता है। राष्ट्रीयता एक वृहद् भावना है और क्षेत्रीयता एक संकुचित दृष्टिकोण है जिसका उद्देश्य कुछ विशेष स्वार्थों या हितों की पूर्ति करना है। क्षेत्रीयतावाद देश की राजनीति में विखंडनात्मक एवं विघटनात्मक प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था एवं राजनीति के संदर्भ में क्षेत्रीयतावाद एक ऐसी प्रवृत्ति या धारणा है जो मुख्यतः भाषा, धर्म या प्रान्तीयता पर विशेष जोर देती दिखाई पड़ रही है। आजादी के बाद से देश के कई हिस्सों में क्षेत्रीयतावाद की प्रवृत्ति धर्म या भाषा को मूलाधार बनाकर प्रायः सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित आन्दोलनों के रूप मे प्रकट होती रही है। पिछले कुछ दशकों से क्षेत्रीयतावाद भारत के राजनीतिक परिदृश्य का सबसे महती प्रसंग रहा है। आधुनिक युग में संचार व्यवस्था की नई तकनीकों, उपनिवेशवाद से उत्पन्न समस्याओं तथा राजनीतिक विकास एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं के बढ़ते महत्त्व की वजह से कुछ क्षेत्रों में जो राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा बढ़ी है, उसके परिणामस्वरूप देश के कुछ हिस्सों में क्षेत्रवाद के तत्त्वों को काफी बढ़ावा मिला है।

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावाद का भौगोलिक पक्ष
(Geographical Aspects of Regionalism in Indian Politics)

भारतकी राजनीति में क्षेत्रीयतावाद के तत्त्वों का आविर्भाव ब्रिटिश हुकूमत द्वारा प्रदत्त भौगोलिक विरासत की देन है। यहां के राजनीति में क्षेत्रीयतावाद की ऐतिहासिक विरासत का विश्लेषण करने के प्रसंग में इसके भौगोलिक पक्ष की महत्ता उजागर होती है। भौगोलिक दृष्टि से भारत एक विशाल देश है जिसकी ख़ास पहचान है–सामाजिक व सांस्कृतिक विविधता में एकता। देश की विविधता का पक्ष धर्म, संस्कृति परम्परा, भाषा, वेशभूषा, खानपान एवं वैचारिक भिन्नताओं से संदर्भित है। भारत की इस सामाजिक व सांस्कृतिक विविधताओं का अंग्रेजी हुकूमत द्वारा भरपूर शोषण किया गया। परतन्त्र भारत भौगोलिक स्तर पर दो भागों में बँटा हुआ था–ब्रिटिश भारत का प्रान्त एवं देशी रियासतें। ब्रिटिश भारतीय प्रान्तों का विभाजन अंग्रेजों द्वारा न्यायसंगत आधार पर नहीं किया गया था, अपितु अपने हितवर्द्धन को ध्यान में रखकर किया गया था। देशी रियासतों के पास थोड़ी आन्तरिक आजादी थी, लेकिन ब्रिटिश प्रान्त पूरी तरह अंग्रेजी सत्ता के अधीन था। ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुध देश में जगी राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय आन्दोलन को दबाने के लिए अंग्रेजी हुक्मरानों द्वारा इन प्रान्तों का भरपूर इस्तेमाल किया

गया। आजादी के बाद भारतीय हुकूमत के सामने सबसे बड़ी समस्या और चुनौती देश में राजनीतिक एकीकरण की थी। प्राथमिक स्तर पर इससे प्रासंगिक दो समस्याएं मुख्यरूप में राष्ट्रीय नेतृत्व के सामने चुनौती बनीं–**प्रथम**, भारतीय संघ में राज्यों का विलीनीकरण और **द्वितीय**, संघ के अन्तर्गत केन्द्र–राज्य संबंधों का निर्धारण। इन दोनों समस्याओं से निपटने के लिए भारतीय मानचित्र में भौगोलिक स्तर पर पुनर्सीमांकन करने की बाध्यता राष्ट्रीय नेतृत्व के लिए एक गंभीर राजनीतिक चुनौती थी। इस समस्या से निपटने के लिए सरकारी स्तर पर जो क़दम उठाया गया, वहीं से आजाद भारत की राजनीति में क्षेत्रीयता के तत्त्वों का बीजारोपण हुआ। आजादी के बाद बीतते समय के साथ भारत सरकार एवं कुछ राज्य सरकारों द्वारा समय–समय पर लिये गये निर्णयों के परिणामस्वरूप आर्थिक पिछड़ापन, जाति, भाषा एवं धर्म के नाम पर देश के विभिन्न हिस्सों में पृथक् राज्य की मांग समय–समय पर उठायी जाती रही है और इस आधार पर नए राज्यों के गठन के निर्णय से इन क्षेत्रीय आन्दोलनों को प्रासंगिक आधारतत्त्व प्राप्त होता रहा हैं।

क्षेत्रीयतावाद पर प्रो. कोठारी का दृष्टिकोण (Prof. Kothari's Views on Regionalism)

प्रो.रजनी कोठारी के शब्दों में, देश में आर्थिक स्रोत की कमी है और मांगों में निरन्तर वृद्धि हो रही है। मांग की अधिकता और उत्पादन में कमी की वजह से व्यक्ति, समुदाय, वर्ग और क्षेत्रों में सभी स्तरों पर गंभीर प्रतिस्पर्द्धाएं मौजूद हैं और इसमें लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। श्री कोठारी ने अपनी पुस्तक 'Politics in India' में क्षेत्रीयतावाद का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए लिखा है : **प्रथम**–देश के सामने एक गंभीर खतरा राज्यों का संघ से पृथक् हो जाने का था। **द्वितीय**–कुछ लोगों द्वारा यह आशंका जतायी गयी कि प्रान्तीयता की भावना के तहत विभिन्न प्रदेशों द्वारा अधिक अधिकारों की मांग एवं स्वायत्तता की मांग की प्रवृत्ति बढ़ती गयी तो देश छोटे–छोटे स्वायत्त राज्यों में बँट जायेगा और तानाशाही का अस्तित्त्व कायम हो जायेगा। **तृतीय**–पृथकता की मांग की प्रवृत्ति उस क्षेत्र के निवासियों में ज्यादा बलवती है जहां आर्येत्तर जातियां बसी हुई हैं। ये भारतीय संस्कृति को पूरी तरह आत्मसात नहीं कर पाई, इसीलिए इनमें असंतोष ज्यादा है, जैसे उत्तरपूर्व की आदिम जातियों का इलाका। **चतुर्थ**–कुछ क्षेत्रों में अभी भी गंभीर असंतोष मौजूद है, जैसे–बिहार, झारखण्डएमध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ के आदिवासी इलाके, उत्तर–पूर्व मे बसी मीजो जाति तथा गुजरात एवं उड़ीसा में बसे आदिवासियों का स्वायत्तता आन्दोलन। **पंचम**–विभिन्न राज्यों के अन्तर्गत विशिष्ट क्षेत्रों में उठने वाले अलगाववादी आन्दोलनों की भी समस्या है। दबे कुचले वर्गों–समूहों के अन्दर राजनीतिक चेतना आने एवं उनके अन्दर उत्पन्न राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने की आकांक्षा की वजह से नयी समस्याएं जन्म ले रही हैं।

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावाद के मुख्य कारक(Causes of Regionalism in Indian Politics)

स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावाद के आविर्भाव और विकास से प्रासंगिक कई कारक हैं जो निम्नांकित हैं :

1. **भौगोलिक–**भौगोलिक दृष्टि से भारत एक विशाल देश है जिसके कई राज्यों का क्षेत्रफल आज भी बहुत बड़ा है। विशाल क्षेत्रफल की वजह से इन राज्यों का यथोचित विकास नहीं हो पाया है। आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन की वजह से इन राज्यों के सदस्यों में व्यवस्था के प्रति गंभीर असंतोष है।
2. **ऐतिहासिक**–भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक विरासत, सामाजिक मिथकों व परम्पराओं आदि ने भी क्षेत्रीयतावाद के तत्त्वों को मजबूती प्रदान करने में महती भूमिका निभायी है। राज्यों के पुनर्गठन की वजह से कई रियासतों की जनता यह महसूस करती है कि यदि उनका प्रान्त पृथक् और स्वायत्त होता तो वे विकास एवं उन्नति की दृष्टि से ज्यादा फ़ायदे में होते।
3. **सांस्कृतिक**–भारत की सांस्कृतिक विविधता का क्षेत्रीयतावाद की प्रवृत्ति को पोषित–पल्लवित करने में उल्लेखनीय योगदान है। अपनी परम्परागत संस्कृति को आधार बनाकर कई राज्यों द्वारा स्वायत्त अस्तित्त्व देने की मांग उठायी गयी है।
4. **आर्थिक**–क्षेत्रीयतावाद की भावना को मजबूत करने में देश की आर्थिक पिछड़ेपन की स्थिति की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण है। राजनीतिक प्राकृतिक संसाधनों में पायी जाने वाली विभिन्नता की वजह से कुछ राज्यों के आर्थिक विकास का प्रतिशत अन्य राज्यों की अपेक्षा बहुत ज्यादा है। बाकी राज्यों में विद्यमान आर्थिक पिछड़ेपन की वजह से उन क्षेत्रों की जनता में असंतोष की भावना मजबूत होती गयी जिसने क्षेत्रीयतावाद की प्रवृत्ति को हवा दी। उदाहरणार्थ–राजस्थान का मारवाड़ और मेवाड़ क्षेत्र, मध्य प्रदेश का मालवा क्षेत्र, आन्ध्र प्रदेश का तेलंगाना क्षेत्र, महाराष्ट्र का विदर्भ क्षेत्र, उत्तर प्रदेश का पूर्वांचल, बुन्देलखण्ड आदि क्षेत्रों में आर्थिक विकास की गति काफी धीमी रही है, जिस वजह से यहां क्षेत्रीयतावाद की भावना को फलने–फूलने का अवसर मिला है। उड़ीसा के भूतपूर्व मुख्यमंत्री जे.बी. पटनायक द्वारा आर्थिक विकास से सम्बद्ध सरकारी आंकड़ों की प्रस्तुति करते हुए यह स्पष्ट किया

कि पूर्वी राज्यों की आर्थिक विकास दर अपेक्षाकृत काफी कम होने की वजह से वहां आर्थिक असंतुलन काफी बढ़ा है, नतीजतन आर्थिक विषमताएं बढ़ी हैं। सरकारी आंकड़ों के हवाले से उन्होंने बताया कि अखिल भारतीय वित्तीय सार्वजनिक संस्थाओं एवं निकायों द्वारा दी जाने वाली वित्तीय सहायता एवं वित्तीय निवेश में पूर्वी राज्यों को यथोचित हिस्सा नहीं मिल पाता है। ये वित्तीय विषमताएं कहीं न कहीं क्षेत्रीयता के तत्त्वों को बढ़ावा देती हैं।

5. **भाषा**–भारत में पायी जाने वाली सांस्कृतिक विविधताओं में भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। देश के उत्तर और दक्षिण के प्रदेशों में भाषा की भिन्नता होने की वजह से संस्कृति के आधार पर दोनों क्षेत्र एक दूसरे से बिल्कुल अलग है। दक्षिणी प्रदेशों में भाषा का इस्तेमाल राजनीतिक हथियार के रूप में किया जाता है। भाषा के नाम पर कई बार हिंसात्मक आन्दोलन हो चुके हैंजिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय एकता पर संकट का बादल मंडराने लगता है। भाषा के आधार पर पनपे क्षेत्रीयतावाद का बेहतर उदाहरण है दक्षिण भारतऔर उत्तर भारतकी संस्कृति का अंतर्।
6. **जाति**–प्रो. कोठारी की अभिव्यक्ति के अनुसार यद्यपि जाति व्यवस्था क्षेत्रीयतावाद के लिए अपने आप में कोई बहुत महत्त्वपूर्ण तत्त्व नहीं है, लेकिन जहां यह आर्थिक हितों (जैसे महाराष्ट्र में मराठा जाति), भाषायी समुदायों (तमिलनाडु में तमिल भाषी और गैर ब्राह्मण जातियां) और धर्म (पंजाब में सिख धर्म और जाट जाति) के साथ जुड़ी हों वहां क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति को मजबूत बनाने में जाति तत्त्व काफी हद तक सहायक होता हैं। प्रो. कोठारी की इस उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि क्षेत्रवाद की भावना को बढ़ाने में परिस्थिति के अनुरूप जाति भी अहम् भूमिका निभाती है। जिन क्षेत्रों में किसी जाति विशेष की आबादी अधिक होती है वहां क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति पनपती है। हरियाणा, महाराष्ट्र आदि राज्यों में क्षेत्रीयता के तत्त्वों को मजबूती प्रदान करने में जाति की काफी अहम् भूमिका रही है। आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर अलग राज्य के रूप में झारखण्ड एवं छत्तीसगढ़ के अस्तित्व–निर्माण के मूल में जनजातीय तत्त्व प्रधान रहा है।
7. **राजनीति**–क्षेत्रीयतावाद की प्रवृत्ति को बढ़ाने में राज्यों की राजनीति की भूमिका भी काफी हद तक जवाबदेह है। क्षेत्रीय नेता पृथक् राज्य की मांग की आड़ में अपना राजनीतिक कद बढ़ाने, राजनीतिक महत्वाकांक्षा का विस्तार करने एवं राजनीति में खुद को जिन्दा रखने का प्रयास करते हैं। कई राज्यों के क्षेत्रीय दल प्रादेशिकता के तत्त्वों को बढ़ाने में सदैव सहायक की भूमिका अदा करते रहे हैं, इसमें पंजाब का अकाली दल, महाराष्ट्र की शिवसेना एवं महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना, झारखण्ड की झारखण्ड मुक्तिमोर्चा, दक्षिण की डी.एम.के. तथा अन्नाद्रमुक का नाम सर्वप्रमुख है।

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावाद के प्रमुख आयाम
(Main Dimensions of Regionalism in Indian Politics)

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावाद का सबसे महत्त्वपूर्ण आयाम पृथक् राज्यों की मांग से संबद्ध है और इसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष संघीय इकाइयों द्वारा पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त करने की मांग से है। इस प्रसंग के तहत 1970 में हिमाचल प्रदेश, 1972 में त्रिपुरा एवं मणिपुर तथा 1987 में मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश और गोआ को पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया। इसी कड़ी में दिसम्बर, 1991 में दिल्ली के लिए 70 सदस्यीय विधानसभा एवं सात सदस्यीय मंत्रिपरिषद् के निर्माण से संबंधित विधेयक संसद् द्वारा पारित करके दिल्ली में पृथक् राजनीतिक प्रशासनिक ढाँचे का निर्माण किया गयाएलेकिन, इस राजनीतिक बदलाव के बावजूद केन्द्र शासित क्षेत्र के रूप में दिल्ली की स्थिति को कायम रखा गया।इसी तर्ज़ पर तेलंगाना का भी गठन हुआ।।

भारत में पृथक् राज्यों के निर्माण की मांग से संबद्ध कुछ तथ्य इस प्रकार हैं :

- सन् 1956 में राज्यों के पुनर्गठन का कार्य पूरा किया गया। इनके पुनर्गठन की मांग का मुख्य आधार भाषायी आधार पर राज्यों को पुनर्व्यवस्थित करने से संबंधित था। भाषाई आधार पर राज्यों की मांग की वजह से देश में गंभीर असंतोष के वातावरण का आविर्भाव हुआ। इस असंतोष के परिणामस्वरूप जहां क्षेत्रीयता की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला, वहीं राष्ट्रीय नेतृत्व के लिए यह असंतोष गंभीर चिन्ता का विषय बना क्योंकि यह प्रवृत्ति राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधक थी।
- गुजराती और मराठी भाषा के आधार पर भी पृथक् राज्य की मांग की आवाजें जोर पकड़ रही थीं नतीजतन 1960 में बम्बई को विभाजित करके महाराष्ट्र एवं गुजरात राज्य का अस्तित्व–निर्माण हुआ।
- सन् 1966 में पंजाब का पुनर्गठन किया गया, परिणामतः पंजाब, हरियाणा एवं केन्द्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ का अस्तित्व–निर्माण हुआ।

- सितम्बर 1968 में असम के पुनर्गठन की घोषणा हुई। दिसम्बर 1968 में असम पुनर्गठन (मेघालय) विधेयक पारित होकर कानून बना और इसी कानून के तहत असम राज्य के अन्तर्गत मेघालय को एक स्वायत्तशासी राज्य के रूप में स्थापित किया गया।
- संघीय प्रदेशों में मणिपुर और त्रिपुरा की जनता अधिक स्वायत्तता की मांग कर रही थी। उन क्षेत्रों के यथोचित आर्थिक विकास के मद्देनजर 1972 में एक अधिनियम पारित करके मणिपुर एवं त्रिपुरा को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया।
- 25 मार्च, 1998 को राष्ट्रपति द्वारा अपने अभिभाषण में उत्तर प्रदेश में उत्तरांचल, बिहार में वनांचल और मध्यप्रदेश में छत्तीसगढ़ के रूप में नये राज्यों के निर्माण से संबंधित सरकार की प्रतिबद्धता की बात कही गयी। इन राज्यों के गठन के लिए विधेयक का प्रारूप तैयार हुआ और संविधान के अनुच्छेद के तहत उसे संदर्भित राज्यों के निर्माण की स्वीकृति के लिए भेजा गया। दिसम्बर 1998 में तीनों राज्यों के पुनर्गठन का विधेयक लोकसभा में पेश हुआ। संसद् द्वारा पारित विधेयक के आधार पर 1 नवम्बर, 2000 को छत्तीसगढ़, 9 नवम्बर 2000 को उत्तरांचल और 15 नवम्बर 2000 को झारखण्ड राज्य अस्तित्व में आये। छत्तीसगढ़ में मध्यप्रदेश के 16 जिलों, उत्तरांचल राज्य में उत्तर प्रदेश के 13 जिलों और झारखण्ड में बिहार के 18 जिलों को सम्मिलित किया गया है।
- 30 जुलाई 2013 को कांग्रेस ने भारत के 29वें राज्य के रूप में तेलंगाना के गठन की घोषणा की। 18 फरवरी 2014 को सदन में तेलंगाना विधेयक पारित हुआ। 02 जून 2014 को आधिकारिक रूप से आंध्रा प्रदेश से पृथक् कर हैदराबाद राजधानी के साथ भारत के 29वें राज्य के रूप में तेलंगाना अस्तित्व में आया और के. चंद्रशेखर राव द्वारा राज्य के पहले मुख्यमंत्री के रूप में शपथ लिया गया। इस संदर्भ में प्रासंगिक तथ्य यह है कि दोनों ही राज्यों की भाषा द्रविड़ है।
- सन् 2000 में छत्तीसगढ़, उत्तरांचल एवं झारखण्ड तीन राज्यों तथा 2014 में तेलंगाना के गठन के बावजूद सात अन्य नये राज्यों के गठन की जोरदार मांग की जा रही है जिसमें उत्तर प्रदेश में पूर्वांचल, हरित प्रदेश एवं बुन्देलखण्ड, महाराष्ट्र में विदर्भ, गुजरात में सौराष्ट्र, असम में बोडोलैण्ड तथा पश्चिम बंगाल में गोरखालैंड प्रमुख है। इन राज्यों के निर्माण की मांग अचानक सामने नहीं आयी है, अपितु काफी लम्बे समय से ये मांग सुर्खियों में है।
- राजनीति में क्षेत्रीयतावाद के पांव मजबूत होने की एक अन्य ख़ास वजह देश में विभिन्न राज्यों के बीच आपसी झगड़े का मुद्दा भी है। मध्य प्रदेश, गुजरात और राजस्थान के बीच नर्मदा नदी के जल बँटवारे को लेकर तीखा विवाद है, पंजाब और राजस्थान के बीच भाखड़ा नांगल बांध की वजह से उत्पन्न बिजली के बँटवारे का विवाद है, कर्नाटक और तमिलनाडु के बीच कावेरी के जल बँटवारे का विवाद है तो महाराष्ट्र तथा कर्नाटक के बीच, पंजाब तथा हरियाणा के बीच असम तथा नागालैण्ड के बीच का सीमा विवाद देश में मौजूद अन्तर्राज्यीय झगड़ों का प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिसकी वजह से काई बार क्षेत्रीयता की संकुचित प्रवृत्ति उग्र रूप धारण करके राष्ट्रीय एकता तथा संघवाद के अस्तित्व के लिए चिन्ता का विषय बन जाती है।
- देश के गिने–चुने राज्यों द्वारा उठायी गयी स्वायत्तता की मांग भी राजनीति में क्षेत्रीयतावाद के तत्त्वों को मजबूती प्रदान करता है। उदाहरणार्थ, पंजाब में मास्टर तारा सिंह के नेतृत्व में अकाली दल द्वारा सिक्खों के लिए स्वायत्त राज्य की मांग जोरदार ढंग से उठायी गयी थी। दक्षिण में द्रमुक और अन्नाद्रमुक द्वारा भी राज्य की स्वायत्तता के मांग का समर्थन किया गया। पश्चिम बंगाल की मार्क्सवादी सरकार द्वारा कई बार राज्यों की स्वायत्तता की मांग उठाई गयी हैऔर वर्ष 1968-69 में तेलंगाना राज्य के निर्माण हेतु वहां के लोगों द्वारा जै तेलंगाना आंदोलन के नाम से जोरदार आंदोलन की शुरुआत की गई जिसका नेतृत्व बाद में के. चंद्रशेखर राव द्वारा किया गया। इन राज्यों द्वारा स्वायत्तता की मांग के साथ यदा कदा पृथक्तावादी मांग भी उठायी जाती रही है। जम्मू कश्मीर विधान सभा द्वारा 26 जून, 2000 को राज्य स्वायत्तता समिति की रिपोर्ट को ध्वनि मत से स्वीकार किया गया जिसमें राज्य की 1953 से पूर्व की स्थिति बहाल करने की बात शामिल है, लेकिन केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वायत्तता की इस मांग को अस्वीकार किया गया।
- राजनीति में क्षेत्रीयतावाद के तत्त्वों को बढ़ावा देने में उतर–दक्षिण की भावना भी काफी कारगर भूमिका निभाती रही है। दक्षिण के चार राज्यों–तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक और केरल में द्रविड़ भाषा बोली जाती है। द्रविड़ भाषियों की यह सोच है कि राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से उत्तर भारतीयों की अपेक्षाकृत दक्षिण भारतीयों को यथोचित लाभ नहीं मिला है। इस सोच की वजह से इनकी अभिवृत्ति में क्षेत्रीयतावाद की भावना काफी प्रबल है, यही कारण है कि आम चुनावों के परिणाम के रूप में उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत के मतदान व्यवहार में काफी भिन्नता दिखाई देती है। दक्षिणवासियों को कई मामलों में केन्द्रीय सत्ता से काफी शिकायत है जो राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सभी पहलुओं से संदर्भित है। ये हिन्दी भाषा को उत्तर भारतीयों की ख़ास जागीर के रूप में

चिन्हित करते हैं, इसलिए इनकी एक बड़ी शिकायत यह भी है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रशासन की भाषा के रूप में अंग्रेजी का इस्तेमाल किया जाय।

- क्षेत्रीयतावाद का मुद्दा कई बार केन्द्र–राज्य संघर्ष के रूप में मुखरित होकर सामने आया है। उदाहरणार्थ, 18 सितम्बर 1968 को केन्द्रीय सरकार द्वारा केन्द्रीय कर्मचारियों की हड़ताल से निबटने के लिए केरल में वामपंथी सरकार के मुख्यमंत्री नाम्बूद्रीपाद को जो आदेश दिया गया, उसे श्रमिक विरोधी बताकर मानने से इन्कार कर दिया गया। इसी प्रकार, 1968 में पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग में नक्सली उपद्रवों पर गंभीर चिन्ता व्यक्त करते हुए केन्द्र सरकार द्वारा जब उपद्रव प्रभावित क्षेत्रों में हथियार रखने पर प्रतिबन्ध लगाया गया तो वामपंथी सरकार ने इसे राज्य के मामलों में केन्द्र का हस्तक्षेप करार दिया। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब राज्य द्वारा केन्द्र की इच्छा का विरोध करके क्षेत्रीयतावाद की मानसिकता का परिचय दिया गया है।
- अनेक बार क्षेत्रीयतावाद का परिचय देते हुए कइ राज्यों में संघ से पृथक् होने की प्रवृत्ति भी दिखाई देती रही है। इस कोटि की मांगों में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम की मांग, अकाली दल की मांग, खालिस्तान की मांग, असम में मिजो की मांग, असम में नागा आन्दोलन की मांग, स्वतंत्र गोरखालैण्ड की मांग, स्वतंत्र कश्मीर की मांग, पृथक् तेलंगाना राज्य की मांग आदि शामिल हैं। इसके अतिरिक्त भूमिपुत्र की धारणा (Son of the Soil) को भी आजकल राजनीति भी क्षेत्रीयतावाद के प्रमुख तत्त्वों में शुमार किया जा रहा है।
- क्षेत्रीयतावाद की बढ़ती प्रवृत्ति से भारतीय राजनीति में कई क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का उदय हुआ है, जैसे–पंजाब में अकाली दल, तमिलनाडु में द्रमुक तथा अन्नाद्रमुक, आन्ध्रप्रदेश में तेलुगूदेशम् तथा तेलंगाना राष्ट्र समिति (T.R.S), जम्मू–कश्मीर मे नेशनल कान्फ्रेंस, उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी, बिहार में राष्ट्रीय जनता दल, उड़ीसा में बीजू जनता दल, असम में असम गणपरिषद्, महाराष्ट्र में महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना, आदि प्रमुख क्षेत्रीय पार्टियां हैं।

सारांशतः, यह कहा जा सकता है कि भारत जैसे विविधतापूर्ण, विशाल लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में क्षेत्रीयतावाद की मनोवृत्ति एक स्वाभाविक धारणा है जिसके तत्त्वों द्वारा समय–समय पर देश की राजनीति को उद्वेलित करने में अहम् भूमिका निभायी जाती रही है। क्षेत्रीयतावाद की प्रवृत्ति से भारतमें राजनीति और समाज के संबंधों को हमेशा नया आयाम तथा नयी दिशा मिलती रही है, फिर चाहे वो असम की बोडो समस्या हो, या महाराष्ट्र एवं असम में उठायी गयी भूमिपुत्र की धारणा की समस्या हो. अकालियों की धार्मिक मांगें होंया तेलंगाना के निर्माण का मुद्दा हो।